शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

# आत्मधर्म

卐 : संपादक : भानुभाई मूलजीभाई लाखाणी 卐

जुलाई : १९६१ ☆ वर्ष सत्रहवाँ, अषाढ़, वीर नि०सं० २४८७ ☆ अंक : ३

## तुझसे हो सके ऐसी यह बात है

ज्ञानी कहते हैं कि—आत्मा को समझो... वहाँ ऐसा नहीं कहना चाहिये कि—अरे! अभी तो मैं बालक हूँ, मैं तो अभी युवक हूँ, मैं तो अब वृद्ध हो गया हूँ, मैं तो मन्दबुद्धि हूँ, मेरे सिर पर तो अनेक कार्यों का भार है... इस समय आत्मा को कैसे समझ सकता हूँ?—भाई! सभी आत्मा स्वभावतः समान है, कोई आत्मा छोटा या बड़ा नहीं है और पर के कार्यों का बोझ किसी आत्मा पर है ही नहीं, क्योंकि आत्मा, पर के कार्य कर ही नहीं सकता; आत्मा की प्रतीति करना—आत्मा को समझना ही सबको करने योग्य मुख्य कार्य है, और जीव जब करना चाहे, तब तक सके—ऐसा यह कार्य है। इसलिये 'हमसे यह नहीं हो सकता'—ऐसी बुद्धि छोड़कर, अंतर से आत्मजिज्ञासु बनकर उसे समझने का प्रयत्न कर, ताकि जन्म-मरण के दुःखसागर से तेरा उद्धार हो.....।

*( -प्रवचन से )*

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[ १९५ ]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ( सौराष्ट्र )

# अपार स्वभाव

आत्मा का ज्ञानस्वभाव, आत्मा का शांतिस्वभाव, आत्मा का धैर्यस्वभाव अपार है.... ऐसे आत्मा की साधना करनेवाले आत्मार्थी को भी पुरुषार्थ में तथा धैर्य आदि में असीमता होती है। उस आत्मार्थी को ऐसा नहीं लगता कि—'मैंने आत्मसाधन के लिये बहुत कुछ किया, अब तो मैं थक गया हूँ।'—उसे तो ऐसा ही लगता है कि कोई भी सीमा निश्चित किये बिना, कहीं भी रुके बिना मुझे आत्मा की साधना करना ही है.... जब तक वह साधना पूरी न होगी, तब तक कहीं रुकूँगा नहीं किन्तु उत्साह से बढ़ाता ही रहूँगा।

इसीप्रकार यदि जगत में विभिन्न प्रतिकूलताएँ आ जायें तो उनसे भयभीत होकर या हारकर आत्मार्थी जीव अपने मार्ग में किंचित् शिथिलता नहीं आने देता, किन्तु गति को बढ़ाता ही जाता है.... उसे ऐसा नहीं लगता कि आत्मा को साधने के लिये मैंने बहुत सहन किया; अब मुझसे सहन नहीं होता.... अर्थात् वह सहनशीलता की सीमा नहीं बाँध देता, क्योंकि अपार स्वभाव की साधना में सहनशीलता और धैर्य भी अपार ही होता है।

(-एक चर्चा के आधार पर)

# जैनदर्शन शिक्षणवर्ग

इस साल प्रौढ़ आयु के जैनभाईयों के लिये ता० १५-८-६१ से ता० ३-९-६१ तक जैनदर्शन शिक्षणवर्ग चलेगा। उसका लाभ लेने के इच्छुक जिज्ञासुओं को आत्मार्थी सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के दिगम्बर जैनधर्म के मूल सिद्धान्तों के रहस्यमय प्रवचनों का भी लाभ मिलेगा। आनेवाले जिज्ञासुओं के ठहरने, जीमने की व्यवस्था संस्था की ओर से होगी। आने की भावना हो वे पहले से सूचित करें।

**श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट**
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

# आत्मधर्म

: संपादक : भानुभाई मूलजीभाई लाखाणी

जुलाई : १९६१ ☆ वर्ष सत्रहवाँ, अषाढ़, वीर नि०सं० २४८७ ☆ अंक : ३

## परम शांतिदायिनी

# अध्यात्म-भावना

भगवान श्री पूज्यपाद स्वामी रचित 'समाधिशतक' पर
परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के
अध्यात्म भरपूर वैराग्य प्रेरक
प्रवचनों का सार

(अंक बी-१९४ से आगे)

[ वीर संवत् २४८२ अषाढ़ शुक्ला दूज ]

भेदज्ञानी अन्तरात्मा को अपने चैतन्यस्वरूप आत्मा में ही 'यह मैं'—ऐसी आत्मबुद्धि है; इसके अतिरिक्त बाह्य में दृश्यमान देहादि किन्हीं भी पदार्थों में उसे आत्मबुद्धि नहीं होती—ऐसा ४४वीं गाथा में कहा है।

धर्मात्मा ने देह से भिन्न, शब्द से पार और विकल्प से अगोचर ऐसे आत्मतत्त्व को स्वसंवेदन से जाना है, तथा उसकी भावना भी करता है; तथापि अभी अस्थिरता के कारण उसे राग-द्वेष भी होते दिखायी देते हैं। इसलिये जिज्ञासु शिष्य को समझने के लिये प्रश्न उठता है कि—हे स्वामी! शरीर से भिन्न आत्मा को जान लेने पर भी तथा उसकी भावना करने पर भी धर्मात्मा को पुनः पुनः यह राग-द्वेष क्यों होते हैं? राग-द्वेषरहित समाधि तुरन्त क्यों नहीं होती? शरीरादि से भिन्नत्व जान लेने पर भी उनमें राग-द्वेष क्यों होते हैं? (एक प्रश्न तो इस अपेक्षा से है)

दूसरी अपेक्षा यह भी है कि—आत्मा, शरीर से भिन्न है—ऐसा जान लेने पर भी, तथा उसकी भावना करने पर भी जीव को पुनः भ्रान्ति क्यों होती है ? अर्थात् वह पुनः अज्ञानी क्यों हो जाता है ? इसके उत्तर में आचार्यदेव कहते हैं कि—

जानन्नप्यात्मनस्तत्त्वं विविक्तं भावयन्नपि।
पूर्वविभ्रमसंस्काराद् भ्रांतिं भूयोऽपि गच्छति॥४५॥

शरीर से भिन्न आत्मत्त्व को जानने पर भी तथा भावना करने पर भी पुनः भ्रान्ति हो जाती है अथवा राग-द्वेष होते हैं, वह पूर्वकालीन विभ्रम के संस्कारों का कारण है। शरीर से भिन्नता जानने पर भी राग-द्वेष रहित समाधि होने के बदले अभी भी राग-द्वेष होते हैं, उसका कारण अनादि से चली आ रही राग-द्वेष की परम्परा अभी सर्वथा टूटी नहीं है; उसके संस्कार अभी बने हुए हैं; इसलिये उसे वह अस्थिरतारूपी भ्रान्ति है। अथवा किसी जीव को एकबार भेदज्ञान होने के पश्चात् पुनः अज्ञान और भ्रान्ति हो जाती है तो जीव वर्तमान में चैतन्य भावना संस्कारों को भूलकर पूर्वकालीन विभ्रम के संस्कार पुनः जागृत करता है, इसीकारण उसे भ्रान्ति होती है-ऐसा समझना चाहिये। इसप्रकार जो जीव पुनः भ्रान्ति करता है, वह बहिरात्मा हो जाता है। इसलिये अंतरात्मा को सावधान करते हैं कि—हे अंतरात्मा! शरीर से भिन्न चैतन्यतत्त्व को जानकर तूने जो अपूर्व दशा प्रगट की है, उसमें भेदज्ञान की ऐसी दृढ़ भावना रख कि पूर्व कालीन भ्रान्ति के संस्कार पुनः जागृत न हों।

अथवा, यह 'समाधि' के उपदेश का शास्त्र होने के कारण समाधि की अपेक्षा से लें तो भेदज्ञान के पश्चात् भी जितने राग-द्वेष होते हैं, उतनी असमाधि है। भेदज्ञानी-अंतरात्मा होने के पश्चात् भी यह असमाधि क्यों ?—तो कहते हैं कि राग-द्वेष के अनादिकालीन संस्कार अभी चले आ रहे हैं, इसलिये राग-द्वेष होते हैं। स्त्री-पुत्र-बंधु आदि के वियोग में धर्मात्मा को भी शोक होता है, रुदन भी करते हैं तथा बंधु-लक्ष्मी-स्त्री-पुत्रादि के संयोग में अपनी कमजोरीवश हर्ष परिणाम भी उसे होते हैं; क्योंकि अभी वीतराग समाधि नहीं हुई है; वहाँ भेदज्ञान होने पर भी ऐसे हर्ष-शोक के परिणाम वर्तते हैं; इसलिये ज्ञानचेतना के साथ उसे उतनी कर्मचेतना भी है। उसे श्रद्धा-ज्ञान में भ्रान्ति नहीं है, किंतु अस्थिरता की अपेक्षा से भ्रान्ति कही जाती है। जिसे श्रद्धा-ज्ञान में भी भ्रान्ति हो जाये, वह तो बहिरात्मा है। भेदज्ञान की भूमिका में भी जितने राग-द्वेष हों, उतनी असमाधि है; उन राग-द्वेष को दूर करके वीतरागरूप से स्वरूप में स्थिर हो, तभी पूर्ण समाधि एवं शांति होती है।

ऐसी समाधि प्राप्त करने के लिये धर्मी जीव कैसे चिंतवन द्वारा उन राग-द्वेष को दूर करके मध्यस्थ होता है—वह अगली गाथा में कहते हैं।

* * *

## वीर सं० २४८२, अषाढ़ शुक्ला चौथ

### ( समाधिशतक, गाथा ४६ )

**अचेतनमिदं दृश्यमदृश्यं चेतनं ततः।**
**क्व रुष्यामि क्व तुष्यामि मध्यस्थोऽहं भवाम्यतः ॥४६॥**

यह जो शरीरादि दृश्य पदार्थ हैं, वे तो अचेतन हैं; उन्हें तो कोई खबर नहीं है कि कौन हमारे ऊपर राग करता है अथवा कौन द्वेष करता है ? और राग-द्वेषादि को जाननेवाला जो चेतनतत्त्व है, वह तो इन्द्रियों से अग्राह्य-अदृश्य है; तो मैं किस पर राग-द्वेष करूँ! इसलिये बाह्य पदार्थों से उदासीन होकर मैं मध्यस्थ होता हूँ—ऐसा धर्मी विचार करता है और अपनी परिणति में समाधि रखता है।

यह शरीर सुंदर अथवा यह कुरूप—ऐसी बुद्धि से राग या द्वेष करूँ, तो बेचारा शरीर तो कुछ जानता नहीं है। यह शरीर ही मैं नहीं हूँ, शरीर तो अचेतन है। अचेतन पर राग-द्वेष करने से क्या ? इसलिये शरीर और आत्मा को भिन्न-भिन्न देखनेवाले ज्ञानी को राग-द्वेष का अभिप्राय नहीं रहता। सुंदर स्त्री को देखे वहाँ, 'यह स्त्री सुंदर है'—ऐसा मानकर अज्ञानी राग करता है। ज्ञानी तो आत्मा और शरीर को भिन्न-भिन्न देखता है कि यह जो सुंदर शरीर दिखायी देता है, वह तो मलिन, अचेतन परमाणु का क्षणभंगुर पुतला है; उसे तो खबर नहीं है कि कौन उससे प्रीति करता है! और स्त्री के शरीर में जो आत्मा विद्यमान है, वह मुझे आँखों से दिखाई नहीं देता, तो बिना देखे उस पर राग कैसा ? इसलिये मेरे राग-द्वेष का कोई विषय नहीं है; मैं तो ज्ञाता रहकर उदासीन / मध्यस्थ होता हूँ। पर के प्रति मध्यस्थ रहकर मैं अपने स्वतत्त्व को ही विषय करता हूँ—आत्मा ही मेरा ध्येय है.... उसी को ज्ञान का विषय बनाकर मैं मध्यस्थ होता हूँ। यह मध्यस्थता ही समाधि है। सम्यक्त्वी को ही ऐसी समाधि होती है। जिसके ज्ञान का विषय स्वतत्त्व नहीं है, उसे पर के प्रति राग-द्वेष का मिथ्या अभिप्राय वर्तता है; इसलिये उसे असमाधि ही होती है।

धर्मात्मा को चारित्र के दोषानुसार अल्प राग-द्वेष हों, तथापि ज्ञान का विषय (ज्ञान का

ध्येय) बदल गया है। ज्ञान-आनन्दरूप आत्मा ही मेरा स्वविषय है। जहाँ राग-द्वेष हों, वहाँ अंतर के चैतन्यविषय का बारम्बार स्पर्श करके ज्ञानी राग-द्वेष को दूर करता है। अज्ञानी बाह्य विषयों के प्रति रोष-तोष करता है; उसका ध्येय ही बाह्य में घूम रहा है, ज्ञानी ने अंतर के चैतन्यस्वभाव को ही ध्येय बनाया है।

मैं तो ज्ञानमूर्ति ज्ञायक हूँ... जगत के पदार्थ अपने-अपने परिणमन प्रवाह में चले जाते हैं... जिसप्रकार नदी में बाढ़ आती है, वहाँ पानी का प्रवाह तो वेगपूर्वक चलता ही रहता है... कोई अज्ञानी किनारे खड़ा-खड़ा ऐसा माने कि—"यह मेरा पानी आया.... और चला जा रहा है!! अरे, मेरा पानी चला जा रहा है!!" तो वह दु:खी होता है। अथवा ऐसा माने कि पानी के प्रवाह में मैं बहा जाता हूँ—तो दु:खी ही होगा। किंतु किनारे खड़ा-खड़ा मध्यस्थरूप से देखता रहे तो उसे कोई दु:ख न होगा। उसीप्रकार जगत के पदार्थों का परिणमन प्रवाह चला जाता है; उसका मध्यस्थरूप से ज्ञाता रहने के बदले जो अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि मैं इन पदार्थों को परिणमित करता हूँ; अथवा यह पदार्थ मेरे हैं, वह जीव मोह के कारण दु:खी होता है। अथवा जो जीव मध्यस्थ-वीतरागी ज्ञाता न रहकर उस परिणमन प्रवाह में राग-द्वेष करके बहता है, उसे भी राग-द्वेष की असमाधि और दु:ख होता है। अपने चिदानन्दस्वभाव में एकाग्रता करके बाह्य पदार्थों के प्रति उदासीनता हो जाने से राग-द्वेष नहीं होते और वीतराग-समाधिरूप आनन्द का अनुभव होता है; इसलिये धर्मात्मा को उसी का अवलम्बन लेना चाहिये ॥४६॥

अब, मूढ़ जीवों के त्याग-ग्रहण का विषय क्या है और धर्मात्मा के त्याग-ग्रहण का क्या विषय है? वह दर्शाते हैं—

त्यागादाने बहिर्मूढः करोत्यध्यात्ममात्मवित्।
नान्तर्बहिरुपादानं न त्यागो निष्ठितात्मनः ॥४७॥

अज्ञानी का विषय ही बाह्य है, इसलिये बाह्य पदार्थों में ही वह ग्रहण-त्याग की बुद्धि करता है। वह बाह्य पदार्थ इष्ट हैं, इसलिये इन्हें ग्रहण करूँ और यह पदार्थ अनिष्ट हैं, इसलिये उन्हें छोड़ दूँ—इसप्रकार बाह्य पदार्थों में दो भाग करके उनका ग्रहण-त्याग करना चाहता है, उसमें मात्र राग-द्वेष का ही अभिप्राय है, इसलिये उसे असमाधि ही है। ज्ञानी का विषय अंतर में अपना आत्मा ही है; समस्त बाह्य पदार्थों को वह अपने से भिन्न ही जानता है; इसलिये किसी बाह्य पदार्थ को मैं ग्रहण करूँ या छोड़ूँ—ऐसा उसके अभिप्राय में नहीं रहा। पर पदार्थ मेरे हैं ही नहीं, तो मैं उनका ग्रहण

कैसे करूँ अथवा उन्हें कैसे छोड़ूँ ?—इसलिये बाह्य में मुझे कुछ भी ग्रहण करने या त्यागनेयोग्य नहीं हैं। अंतरात्मा अपने शुद्ध आत्मा को ग्रहण करके (अर्थात् उसमें श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र से एकाग्र होकर) रागादि परभावों को छोड़ता है। इसप्रकार अंतर में ही उसे ग्रहण-त्याग है। ज्ञानी की दृष्टि का विषय ही बदल गया है।

बाह्य विषयों से भिन्न अंतर का चैतन्य विषय जिसकी दृष्टि में नहीं आया, उसे बाह्य पदार्थों के प्रति द्वेषबुद्धि से त्याग की भावना वर्तती है तथा रागबुद्धि से उन्हें ग्रहण करने की। चैतन्य के ग्रहण बिना अज्ञानी की पर के प्रति राग-द्वेष की बुद्धि नहीं छूटती; इसलिये उसका त्याग द्वेषभावपूर्वक ही होता है; उसे वीतरागभाव नहीं है; क्योंकि चैतन्य के अवलम्बन बिना वीतरागभाव नहीं होता और चैतन्य विषय तो अज्ञानी की दृष्टि में आया ही नहीं है। जहाँ अंतरस्वभाव को विषयरूप करके ज्ञान में लिया (ज्ञानस्वभाव को ही ग्रहण किया), वहाँ बाह्य विषयों का ग्रहण ही नहीं रहा। इसलिये बाह्य विषयों के प्रति राग-द्वेष नहीं रहा, राग-द्वेष का त्याग होकर समाधि ही हुई। इसप्रकार स्वविषय का ग्रहण ही समाधि का उपाय है। जिसने दृष्टि का विषय नहीं बदला है (—परविषय छूटकर स्वविषय जिसकी दृष्टि में नहीं आया है), उसे किसी प्रकार समाधि नहीं होती; और समाधिरहित त्याग तो द्वेष पूर्ण त्याग है, क्योंकि उसके अभिप्राय में आत्मशांति नहीं किन्तु जलन है।

चैतन्यस्वभाव का अवलम्बन लिये बिना बाह्य में त्याग करने जाता है, वह तो द्वेषगर्भित है। ज्ञानी को अंतर में चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन से ज्यों-ज्यों वीतरागी शांति बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों राग-द्वेष छूटते जाते हैं और बाह्य विषयों का अवलम्बन भी छूटता जाता है। अज्ञानी, चैतन्य की शांति में नहीं आया है; उसके राग-द्वेष नहीं छूटे हैं और बाह्य विषय छोड़ना चाहता है। इसलिये उसका त्याग तो द्वेष-अभिप्राय से भरपूर है। स्वविषय के अवलम्बन रहित त्याग सच्चा होता ही नहीं।

★

# चैतन्य के अनुभव का सुन्दर उपदेश

दक्षिण भारत के तीर्थधामों की उल्लासपूर्ण यात्रा करके लौटते समय पूज्य गुरुदेव कलोल नगर में पधारे थे; वहाँ के जैनसमाज ने उनका उत्साह पूर्वक स्वागत करके दो दिन तक प्रवचनों का लाभ लिया था। उन प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है।

**[ वैशाख शुक्ला ६-७, वीर सं० २४८५ ]**

शरीर से भिन्न आत्मतत्त्व क्या वस्तु है, उसकी यह बात है। श्री समयसार की इस १७-१८ वीं गाथा में आचार्यदेव ने कहा है कि—भगवान आत्मा चैतन्य की अनुभूतिस्वरूप है; वह स्वयं आबाल-वृद्ध सबको सदाकाल अनुभव में आने पर भी मूढ़-अज्ञानी जीव स्व-पर की एकत्वबुद्धि के कारण, अनुभूतिस्वरूप अपने आत्मा को नहीं पहचानते, इसलिये 'इस चैतन्यतत्त्वस्वरूप से अनुभव में आता है, वही मैं हूँ'—ऐसा आत्मज्ञान उन्हें उदित नहीं होता; और अनुभवरहित श्रद्धान तो मिथ्या है, इसलिये उन्हें श्रद्धान भी नहीं होता; और श्रद्धा-ज्ञान के बिना स्थिर कहाँ हो ? इसलिये आत्मा का चारित्र भी उन्हें साध्य नहीं होता।—इसप्रकार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र के बिना आत्मा की सिद्धि नहीं होती।

इसलिये हे मोक्षार्थी जीवो! सर्वप्रकार से उद्यमपूर्वक प्रथम तो तुम आत्मा का स्वरूप समझो; यथार्थस्वरूप समझकर उसकी श्रद्धा करो और फिर निःशंकरूप से उसमें लीन हो। —इसप्रकार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र द्वारा आत्मा की सिद्धि होती है।

राजा का दृष्टान्त देकर चैतन्य राजा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र करना समझाया है। 'राजते-शोभते इति राजा'—सर्व तत्त्वों में चैतन्य तत्त्व ही अपने अचिन्त्य स्वभाव से सुशोभित हो रहा है; इसलिये चैतन्यतत्त्व समस्त तत्त्वों का राजा है। ऐसे चैतन्यराजा को शरीर से तथा रागादि से भिन्नस्वरूप में भलीभाँति जानना चाहिये। चैतन्य को भूलकर यह जीव अनादिकाल से संसार परिभ्रमण कर रहा है। जिसे उस परिभ्रमण की थकावट लग रही हो तथा उससे छूटना चाहता हो ऐसे जीव के लिये यह बात है।

बीसवें कलश में आचार्यदेव कहते हैं कि अनंत (अविनश्वर) चैतन्य जिसका चिह्न

है—ऐसी इस आत्मज्योति का हम निरंतर अनुभव करते हैं, क्योंकि उसके अनुभव बिना अन्य रीति से साध्य आत्मा की सिद्धि नहीं है। अहा! देखो तो सही! आचार्यदेव कहते हैं कि ऐसे चिदानंदस्वरूप आत्मा के अनुभव से ही साध्य आत्मा की सिद्धि होती है; इसलिये हम निरंतर उसी का अनुभवन करते हैं; रागादि का एकक्षण भी हम अपने स्वरूपरूप में अनुभव नहीं करते। तथा जो मोक्षार्थी हों, वे भी अंतरंग प्रयत्न द्वारा निरंतर ऐसे आत्मा का अनुभवन करो; क्योंकि—

'न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः'

ऐसे चैतन्य के अनुभव बिना अन्य किसी प्रकार से साध्य की सिद्धि नहीं है... नहीं है।

कैसी है आत्मज्योति? अविनाशी चैतन्य जिसका चिह्न है, ऐसी आत्मज्योति का हम सतत् अनुभव करते हैं। अरे जीव! तेरा लक्षण तो ज्ञान है, चैतन्य ही तेरा स्थायी चिह्न है। ज्ञान को अंतरोन्मुख करने पर आत्मा चैतन्य ज्योतिरूप से अनुभव में आता है। वह अनुभव इतना आनन्दरूप है कि—आचार्यदेव कहते हैं कि—हम उसी का सतत्रूप में अनुभवन करते रहते हैं... एक क्षण भी उस अनुभव से बाहर नहीं निकलना चाहते। अज्ञानी तो शुभराग को हितरूप या साधनरूप मानकर उस राग के अनुभव में अटकता है, राग से भिन्न चैतन्यचिह्न को वह नहीं जानता और चैतन्यज्योति आत्मा का अनुभवन नहीं करता।

भाई, अनंत काल में तूने सब कुछ किया, किन्तु अपनी चैतन्य-ज्योति को नहीं जाना; सर्व को जाननेवाला-प्रकाशित करनेवाला चैतन्य-दीपक स्वयं ही अंधकार में रहा। हे जीव! जिसे जाने बिना अन्य किसी प्रकार सिद्धि नहीं है, ऐसी अपनी आत्मज्योति को तू जान। चैतन्य जिसका चिह्न है—ऐसी आत्मज्योति ने व्यवहार से दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप त्रिरूपता अंगीकार की है, तथापि वह आत्मज्योति एकरूपता से च्युत नहीं हुई है और निर्मलरूप से उदित हो रही है।—'ऐसी आत्मज्योति का हम निरंतर अनुभवन करते हैं'—ऐसा कहने में आचार्यदेव का यह आशय भी समझना कि हमारी भाँति सम्यग्दृष्टि पुरुष भी ऐसे ही आत्मा का अनुभव करते हैं, और जो सम्यग्दृष्टि होना चाहते हों, वे भी अंतर में अभ्यास द्वारा ऐसे आत्मा का ही अनुभवन करो। ऐसे आत्मा के अनुभव से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सिद्धि होती है।

**प्रश्न**—ऐसा अनुभव किसे हो सकता है?

**उत्तर**—आबाल-वृद्ध सभी को ऐसे आत्मा का अनुभव हो सकता है; किन्तु उसके लिये अंतर से तैयारी होना चाहिये; अंतर्प्रयत्न से आत्म-ज्योति का अनुभव होता है और उसी से कार्य

सिद्धि होती है। इसके अतिरिक्त अन्य चाहे जितना किया जाये, तथापि किंचित् कार्य सिद्धि नहीं होती। कौन-सा कार्य? यहाँ मोक्षार्थी की बात है और मोक्षार्थी का कार्य तो मोक्ष ही है। उस मोक्ष की सिद्धि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से ही होती है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—यह तीनों शुद्ध आत्मा के अनुभव में समा जाते हैं। इसलिये आचार्यदेव ने कहा है कि ऐसे चैतन्य के अनुभव से उत्तम अन्य कुछ नहीं है। इस चैतन्य के अनुभव से ही मोक्षरूप कार्य की सिद्धि होती है, अन्य किसी प्रकार मोक्षकार्य सिद्ध नहीं होता।

भाई, पुण्य तो तूने अनंत बार किये, किंतु उनका फल क्या मिला?—संसार परिभ्रमण तो बना ही रहा। पुण्य से तेरे मोक्षकार्य की सिद्धि किंचित् भी नहीं हुई। पुण्य में तो राग का अनुभव है और उसमें आकुलता है, चैतन्य की शांति उसमें नहीं है। चैतन्य की शांति तो राग से पार है। राग तेरा चिह्न नहीं है, तेरा चिह्न तो चैतन्य ही है। अहा! चैतन्य चिह्न कहकर आचार्यदेव ने राग और आत्मा को स्पष्टरूप से पृथक् कर दिया है। उन्हें पृथक् करके चैतन्यलक्षित आत्मा का अनुभवन करना ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र अर्थात् मोक्ष का उपाय है। यही वीतरागी जिनेन्द्र भगवन्तों का निर्मोही पंथ है। भगवान ऐसे अनुभव द्वारा संसार से मुक्त हुए और जगत के जीवों को भी यही मार्ग बतलाया। ऐसा मार्ग समझकर धर्मात्मा भक्ति के उल्लासपूर्वक कहते हैं कि हे परमात्मा! आपने हमारे लिये मोक्ष के भण्डार खोल दिये हैं... आपने हमें गुणों के निधान बतलाये... हमारे चैतन्य से भरे हुए अचिंत्य निधान आपने हमें दिखला दिये हैं... हे नाथ! इस चैतन्य निधान के समक्ष इन्द्रपद का वैभव भी हमें तुच्छ, सड़े हुए तिनके समान भासित होता है। चैतन्यानन्दनिधान के सन्मुख राग के फल अत्यन्त तुच्छ लगते हैं। वीतरागी चैतन्य के स्वाद के आगे राग का रस फीका मालूम होता है। अरे जीव! ऐसे वीतरागी चैतन्य भण्डार की ओर उन्मुख हो तो तेरी वृत्ति बाह्यवैभव की ओर से हट जाये और राग में भी तेरी वृत्ति न रहे। यहाँ, चैतन्य के अनुभव से ही साध्य की सिद्धि है, ऐसा कहकर निमित्त या व्यवहार सबका अवलम्बन उड़ा दिया है और यह बतलाया है कि—निमित्त या व्यवहार के अवलम्बन से साध्य की सिद्धि किंचित नहीं होती। पर का और राग का अवलम्बन तो दूर रहो—अरे, जब तक दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद का अवलम्बन रहे और अभेद चैतन्य को अनुभव में न ले, तब तक जीव को सच्ची शांति-सुख-आनन्द या धर्म की सिद्धि नहीं होती। दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ऐसे भेद होने पर भी चैतन्य तत्त्व अपने एकाकार स्वरूप से छिदकर खण्ड-खण्डरूप नहीं हो जाता। यहाँ 'आत्मज्योति' में श्रद्धा-ज्ञान-

चारित्र तीनों का समावेश कर दिया है। जिसप्रकार अग्नि की ज्योति में पाचक, प्रकाशक और दाहक—ऐसे तीन गुणों का समावेश है, उसीप्रकार 'आत्मज्योति' में भी सम्पूर्ण स्वभाव को श्रद्धा में पचाने की पाचकशक्ति, स्व-पर को जाननेरूप ज्ञान में प्रकाशकशक्ति तथा विभावों को भस्म कर देने की चारित्र में दाहक शक्ति है। ऐसी आत्मज्योति को श्रद्धा-ज्ञान में लेकर उसमें स्थिर होना, सो धर्म है।

आचार्यदेव ने अन्य जीवों की बात न करके अपनी ही बात की है कि हम सतत्‌रूप से इस आत्मज्योति का ही अनुभव करते हैं; इसलिये अन्य जो मोक्षार्थी जीव हमारी ही भाँति आत्मा की सिद्धि प्राप्त करना चाहते हों, वे भी ऐसी आत्मज्योति का अनुभव करो!—ऐसा उपदेश उसमें गर्भितरूप से आ ही जाता है; क्योंकि इस एक ही रीति से साध्य आत्मा की सिद्धि है... अन्य किसी प्रकार साध्य आत्मा की सिद्धि नहीं है।

भाई, तू विचार तो कर कि तेरी शांति तेरे अनुभव में होगी या दूसरे के अनुभव में? जिसप्रकार कस्तूरी की सुगंध मृग की नाभि में से ही आती है, कहीं बाहर से नहीं आती; उसीप्रकार चैतन्य की शांति अपने स्वभाव के अनुभव से ही होती है, किन्हीं बाह्य पदार्थों के अनुभव से शांति नहीं होती। इसलिये हे जीव! अपनी शांति अपने में ही ढूँढ़! कस्तूरी मृग समान पशु की भाँति उसे बाहर न ढूँढ़। तेरी प्रभुता तुझमें ही है, किन्तु उसे भूलकर तू पामर की भाँति भटक रहा है। स्वभावतः प्रभु होने पर भी पर्याय में पामर हो रहा है। श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा है कि—प्रभु में भी दुर्गुणों का पार नहीं है।—वह कौन-से प्रभु की बात है? जो केवलज्ञान प्राप्त करके परमात्मा हो गये, उनकी यह बात नहीं है, किन्तु स्वभाव की प्रभुता को भूलकर जो पामर हो रहे हैं और राग-द्वेष-मोहरूप दुर्गुणों में अर्थात् विभाव में वर्त रहे हैं, उनकी यह बात है। प्रभु होने पर भी दुर्गुणों का पार नहीं है—ऐसा कहकर स्वभाव की प्रभुता और पर्याय की पामरता बतलाई है। दोनों का ज्ञान करके, प्रभुता के बल से पामरता को दूर करने का प्रयोजन है।

पूर्ण प्रभुता—वीतरागता-प्रगट न हुई हो, वहाँ साधक धर्मात्मा को बीच में शुभराग—दया-दान-पूजा-भक्ति-व्रत-तप-यात्रादि के भाव आते हैं, किंतु उस राग की खतौनी वह अपनी प्रभुता में नहीं करता, उसे वह पामरता समझता है। चैतन्य की परम प्रभुता के समक्ष राग तो उसे अत्यन्त तुच्छ भासित होता है; उस राग द्वारा अपनी प्रभुता धर्मी कैसे मानेगा?—नहीं मान सकता। जो जीव राग की प्रभुता (बड़प्पन, महिमा) देता है, वह चैतन्य की प्रभुता को भूलता है; इसलिये

पर्याय में पामर होकर संसार में परिभ्रमण करता है। और जो जीव राग से पार चैतन्य की प्रभुता को पहिचानता है, वह पर्याय में भी प्रभुता प्रगट करके संसार से छूटकर सिद्ध पद प्राप्त करता है।

अहा, देखो तो सही.... इस चैतन्यतत्त्व की महिमा! अमृतचन्द्राचार्यदेव ने स्वानुभव से अद्भुत वर्णन किया है। स्वयं स्वानभव की अचिंत्य महिमापूर्वक कहते हैं कि—अहा! हम तो सतत-निरंतर इस आत्मज्योति का ही अनुभव करते हैं... कहाँ तक ?—तो कहते हैं कि सादि - अनंतकाल तक इस आत्मज्योति के आनन्द का अनुभव करते रहेंगे... उसी में मग्न रहेंगे। देखो, यह धर्म की रीति! यह मोक्ष का मार्ग! ऐसे अनुभव के अतिरिक्त अन्य कोई धर्म की रीति नहीं है अथवा अन्य कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है।

जब तक ऐसे चैतन्य का अनुभव नहीं किया, तब तक समस्त समस्त साधना झूठी है। भाई, एक बार शांत होकर सुन! तूने चैतन्य का मार्ग कभी नहीं लिया... संत तुझे अनादि काल से अनजान चैतन्यपथ बतलाते हैं। अपने माने हुए पथ पर तो तू अनादि से चला आ रहा है, किंतु तेरे हाथ कुछ नहीं आया; इसलिये अब अपनी बात को एक ओर रखकर इस बात को लक्ष में ले। ज्ञान के अंतर्मुख करके स्वसंवेदन किये बिना आत्मा को पकड़ने ( अनुभव करने ) की अन्य कोई विधि है ही नहीं। जिसप्रकार प्रकाश करना ही अंधकार को दूर करने की विधि है, उसीप्रकार स्वसंवेदन से चैतन्यप्रकाश करना ही मिथ्यात्वादि अंधकार को दूर करने की विधि है। 'अनुभव करके आनंद में रहना चाहिये;'—किसप्रकार आनंद में रहा जाता है ?—तो कहते हैं कि आनन्दस्वरूप मेरा आत्मा ही है, इसके अतिरिक्त जगत् में अन्य कहीं मेरा आनन्द नहीं है—ऐसी अंतर्मुख श्रद्धा-ज्ञान करके आत्मा में स्थिर होने पर आनन्द का अनुभव होता है, यही आनन्द में रहने की रीति है। जिसे अभी आत्मा की प्रतीति ही न हो, अनुभव ही न हो, और कहे कि—'आनन्द में रहना चाहिये;' तो अभी उसे आनन्द की गंध भी नहीं है; वह अपनी मिथ्याकल्पना से भले ही आनन्द माने—जिसप्रकार कोई पागल मनुष्य अपने को सुखी मानता है,—परन्तु वास्तविक आनन्द या सुख उसे नहीं है। जिस वस्तु में आनन्द भरा है, उसके अनुभव बिना आनन्द का वेदन नहीं होता और ज्ञान के बिना अनुभव नहीं होता। अरे, आत्मा! तेरा आनन्द तुझमें भरा हुआ है, परंतु अपने आनन्द का अनुभव करने की वास्तविक रीति का मार्ग तूने कभी नहीं अपनाया, विपरीत मार्ग ही लिया है। इसलिये श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं कि:—

वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो;
अब क्यों विचारत है मन सें, कछु और रहा उन साधन से ?

अरे जीव! तू विचार तो कर कि अन्य सर्व साधन करने पर भी क्यों कुछ हाथ नहीं आया? उन सबसे भिन्न प्रकार का ऐसा कौन-सा साधन बाकी रह गया कि जिसके बिना मुक्ति नहीं हुई और संसार भ्रमण बना रहा! वह साधन यहाँ आचार्यदेव बतलाते हैं... और जागृत करते हुए कहते हैं कि अरे जीव! अपने चैतन्यतत्त्व का अनुभव ही तेरी मुक्ति का साधन है... उसके अनुभव बिना ही तू परिभ्रमण कर रहा है। 'अपने को आप भूलकर हैरान हो गया।' वस्तु अपने में-अपने आप; और बाहर ढूँढ़े तो वह कहाँ से मिलेगी? और उसकी अशांति कैसे दूर होगी? अपनी वस्तु को बाह्य में मानकर उसकी प्राप्ति के लिये जितने साधन करे, उनमें से एक भी साधन कहाँ से सच्चा होगा? जहाँ हो, वहाँ ढूँढ़े और प्रयत्न करे तो अवश्य प्राप्त हो। मेरी वस्तु मुझमे ही है—ऐसा समझकर अंतर में ही ढूँढ़।'

ते जिज्ञासु जीवने.... थापे सद्गुरुबोध,
तो पामे समकित ते.... वर्ते अंतर्शोध। (श्रीमद् राजचन्द्र)

आत्मा में अंतर्शोध करना यानी श्रद्धा को, ज्ञान को, चारित्र को आत्मोन्मुख करना ही सम्यग्दर्शनादि का उपाय है, वही मोक्षमार्ग है; अन्य कोई मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग एक ही है—दो नहीं हैं; किन्तु दो प्रकार से (निश्चय से तथा व्यवहार से) उसका कथन है। अंतर्अनुभव से आत्मज्योति निर्मलतारूप से उदित हो, उसका नाम मोक्षमार्ग है। आत्मा स्वयं अपने स्वभाव से निर्मल ज्योतिरूप से उमड़ता है, वहाँ उसे कोई रोक नहीं सकता। जिसप्रकार समुद्र जब अपने मध्यबिन्दु से उमड़ता है और ज्वार आता है, तब सूर्य की प्रखर किरणें भी उसे नहीं रोक सकतीं; उसीप्रकार चैतन्य आत्मा अन्दर से स्वयं निर्मल पर्यायरूप से उमड़ा, वहाँ उसकी पर्याय के ज्वार को जगत की कोई प्रतिकूलता नहीं रोक सकती। और जिसप्रकार बाहरी नदियों के जल से समुद्र में ज्वार नहीं लाया जा सकता; उसीप्रकार पाँच इन्द्रियोंरूपी नदियों के प्रवाह द्वारा चैतन्य में ज्ञान का ज्वार नहीं लाया जा सकता। आत्मा स्वयमेव ही स्वयंसिद्ध शक्तिवान है; स्वयमेव छह कारकरूप होकर सम्यग्दर्शनरूप या केवलज्ञानरूप से क्षणमात्र में परिणमित हो जाये, ऐसी अचिंत्य शक्ति उसमें है। ऐसी शक्ति बतलाकर आचार्यदेव कहते हैं कि—भाई, तू स्वयं परमेश्वर होने योग्य है। जिसप्रकार राजपुत्र, राजा होने योग्य है; उसीप्रकार आत्मा ही सिद्धपद का राज्य लेने योग्य है। अहा! अपने सिद्धपद की बात सुनकर तू प्रमुदित हो। जिसप्रकार किसी को बड़ा राज्य प्राप्त होने पर प्रमोद आता है; उसीप्रकार यहाँ तो तीन लोक का राज्य ऐसा सिद्धपद प्राप्त होने की बात तुझे समझा

रहे हैं। उसे सुनकर कौन प्रमुदित नहीं हो उठेगा? अपने सिद्धपद की बात सुनते ही मोक्षार्थी का रोम-रोम, चैतन्य का एक-एक प्रदेश उल्लसित हो उठता है और वह अंतर्मुख होकर अपने परमात्मपद को साधता है।

अनंतशक्ति का पिण्ड चैतन्य मूर्ति आत्मा स्वयं आनन्द का समुद्र है; राग के अवलम्बन से वह नहीं उमड़ता किंतु भीतर डुबकी लगाकर एकाग्र होने से वह उछलने लगता है। जिसप्रकार कच्चे चने में कचाँध आती है और बोने से पुनः पुनः उगता भी है, किंतु उसे सेक डालने पर मीठा स्वाद आता है और फिर बोने से उगता भी नहीं है; उसीप्रकार आत्मा में राग-द्वेष-मोहरूपी कषाय है, तब तक उसका स्वाद भी कचाँध (कषाययुक्त) आता है और वह संसार में जन्म-मरण करता है; किंतु अंतर में सम्यगदर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा सेंकने पर उसके आनन्द का मीठा स्वाद प्रगट हो जाता है और वह फिर संसार में जन्म धारण नहीं करता। चैतन्यानन्द के स्वाद को चूककर जीव अनादि से अकुलता का ही अनुभव कर रहा है। भाई, एक बार तो निर्णय कर कि मैं स्वयं ही आनन्दकंद हूँ, मेरा आनन्द कहीं बाह्य में नहीं है।—ऐसे निर्णय के बल से अंतर्मुख होने पर अतीन्द्रिय आनन्द का (सिद्ध भगवान जैसा) स्वाद आ जायेगा और पूर्णानन्द का विश्वास हो जायेगा कि मैं ऐसा परिपूर्ण आनन्दस्वभावी हूँ; इसलिये पूर्ण आनन्द प्रगट करने के लिये मुझे अपने में ही एकाग्र होना रहा; अपने आनन्द के लिये किसी अन्य की पराधीनता नहीं रही। ऐसी स्वाधीन दृष्टि से ही धर्म का प्रारम्भ होता है। जिसकी दृष्टि में ही पराधीनता है (पराश्रय से लाभ होने की जिसकी मान्यता है), वह स्वोन्मुख कैसे होगा? और स्वोन्मुख हुए बिना आत्मा के आनन्द की या धर्म की किंचित् भी प्राप्ति नहीं हो सकती। **स्वाधीन दृष्टि का मूल्य जगत को भासित नहीं होता। सारे जगत को तथा व्यवहार को दृष्टि से हटा देना पड़े, इतना स्वाधीन दृष्टि का मूल्य है। अपने शुद्ध आत्मा के अतिरिक्त जगत में अन्य किसी से मुझे लाभ नहीं हो सकता, व्यवहार के विकल्प के आश्रय से भी मुझे लाभ नहीं होता; उनके आश्रय में मेरी सिद्धि नहीं है;—इसप्रकार स्वाधीन दृष्टि का मूल्य चुकाकर अंतरोन्मुख होने से अपूर्व सिद्धि (सम्यग्दर्शनादि) की प्राप्ति होती है; वही धर्म है तथा वही मुक्ति का मार्ग है।**

# स्वभाव-शक्ति का विश्वास

[ पद्मनन्दि० एकत्व अधिकार गाथा २६ पर
पूज्य श्री कानजी स्वामी का प्रवचन ]

परपदार्थ आत्मा से बिल्कुल पृथक् होने पर भी पर से मुझे लाभ-हानि होते हैं और मैं पर को लाभ-हानि करता हूँ—ऐसी मिथ्याबुद्धि ही संसार है। प्रत्येक तत्त्व अपने स्वभाव से पूर्ण है, उसका जिसे भान नहीं है, वह जीव एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व का आश्रय मानता है। मैं अपने चैतन्यस्वभाव से परिपूर्ण हूँ, अपनी मुक्ति के लिए मुझे बाह्य का किंचित् आश्रय नहीं है—इसप्रकार अपनी पूर्णता का विश्वास न करके, मेरी मुक्ति के लिये कुछ पर की या पुण्य की सहायाता चाहिये—ऐसा मानकर पराश्रय से जीव अनंत काल से भटक रहा है। जिसप्रकार कस्तूरीवाले मृग की नाभि में ही सुगन्धित कस्तूरी भरी हुई है; परन्तु उसका उसे विश्वास नहीं है इसलिये बाहर दौड़-धूप करता है। मैं तो जंगल का घास खाकर जीनेवाला और थोड़ी सी भी आवाज होने पर डरनेवाला प्राणी हूँ, मुझमें इतनी अच्छी सुगन्ध कैसे हो सकती है ?—इसप्रकार अपनी शक्ति का अविश्वास ही उसे बाह्य में भटकाता है। उसीप्रकार जीव को मुक्त होना है-सुखी होना है; परन्तु मुक्त और सुखी होने का सामर्थ्य अपने में ही भरा है, उसका विश्वास न करके, किसी निमित्त के आश्रय से या व्यवहार के आश्रय से मुक्ति होगी—ऐसा मानकर बहिर्बुद्धि से संसार में भ्रमण करता है। मैं तो अल्पज्ञ और रागी हूँ, मेरा चाय के बिना भी नहीं चल सकता, तो फिर मुझमें सिद्ध परमात्मा होने की शक्ति कहाँ से होगी ?—इसप्रकार अपने स्वभावसामर्थ्य का अविश्वास ही जीव को संसार में परिभ्रमण कराता है। जगत के जीव अपनी अंतरशक्ति को भूलकर बाह्य में से सुख और शांति लेने का प्रयत्न करते हैं, उन्हें सुख-शांति का मार्ग कहाँ से हाथ में आये ? ज्ञानी कहते हैं कि—'सर्व जीव छे सिद्धसम, जे समजे के थाय।' प्रत्येक जीव सिद्ध भगवान जैसा परिपूर्ण स्वभाव-सामर्थ्यवाला है। अवस्था में राग-द्वेष और अल्पाता होने पर भी, स्वभाव में से सिद्ध होने की शक्ति मिट नहीं गई है। जो जीव सिद्ध हुए, उन्हें भी पहले तो अवस्था में राग-द्वेषादि भाव थे, और स्वभाव की श्रद्धा के बल से उस राग-द्वेष का नाश करके सिद्ध हुए हैं। वह सिद्धदशा कहाँ से आयी ? बाहर से नहीं आई है, परन्तु आत्मा में ही शक्तिरूप से थी, उसमें से प्रगट हुई है। वर्तमान अवस्था में रागादि होने पर भी उनकी मुख्यता न करके ( राग जितना ही अपने

को न मानकर) सिद्ध भगवान जैसा ही सामर्थ्य मेरे आत्मा में भरा है, अनंत सिद्ध दशाएँ प्रगट होने की शक्ति मेरे स्वभाव में है—इसप्रकार यदि स्वसन्मुख होकर अपने स्वभावसामर्थ्य का विश्वास करे तो उसके आश्रय से अल्पकाल में अवस्था में से रागादि का अभाव होकर सिद्धदशा प्रगट हो; परन्तु जीव अपने स्वभाव की पहिचान और प्रतीति नहीं करता, तथा राग-द्वेष ही मैं हूँ—ऐसी पकड़ की है। श्री आचार्य भगवान कहते हैं कि हे जीव! यह विकारबुद्धि छोड़ दे, छोड़ दे! प्रभु! अब एकबार स्वभावबुद्धि कर कि—विकार जितना मैं नहीं हूँ, परन्तु सिद्धसमान हूँ। अनादि काल से स्वभाव को भूलकर विकार को पकड़ रखा है, इसी से भ्रमण हुआ है; अब उस मिथ्या पकड़ को छोड़ दे, छोड़ दे!

## ज्ञानी का हृदय और भवसागर की नौका

प्रश्न—ज्ञानी के हृदय-कमल में क्या है?

उत्तर—ज्ञानी के हृदय-कमल में परमात्मतत्त्व विराजमान है।

प्रश्न—वह परमात्मतत्त्व कैसा है?

उत्तर—वह परमात्मतत्त्व भवसागर में डूबते हुए जीवों को नौका के समान है; उसके अवलम्बन से भव्यजीव भवसागर से पार हो जाते हैं।

# ज्ञान-दर्पण

करीब ढाई सौ वर्ष पहले जयपुर राज्य में दीपचन्दजी नाम के एक अध्यात्म प्रेमी कवि हो गये हैं। 'अनुभवप्रकाश', 'परमात्मपुराण' आदि अनेक अध्यात्म-ग्रन्थों की रचना द्वारा उन्होंने अपना अध्यात्म-रस प्रवाहित किया है। उनकी कथन शैली कितनी सरल, तथापि कैसी प्रभावशाली है, वह तो 'अनुभवप्रकाश' पढ़नेवाले समझ सकते हैं। उनके रचे हुए पाँच ग्रंथों का संग्रह 'अध्यात्म-पंच संग्रह' के नाम से प्रकाशित हुआ है; उसमें 'ज्ञान-दर्पण' पद्यरूप में है। उस ज्ञान-दर्पण में सम्यग्दृष्टि संत की परिणति का सुन्दर महिमायुक्त वर्णन किया गया है। कुल १९६ पद हैं; उनमें से एक पद अर्थसहित यहाँ दिया जा रहा है, ताकि जिज्ञासु पाठक उसके अध्यात्मरस का आस्वादन कर सकें।

## निज भावना का आनन्द

परम पदारथ को देखे परमारथ ह्वै,
स्वारथ स्वरूप को अनूप साधि लीजिये,
अविनाशी एक सुखराशि सोहे घट ही में,
ताको अनुभौ सुभाव सुधारस पीजिये;
देव भगवान ज्ञान कला को निधान जाको,
उरमें अनाय सदाकाल थिर कीजिये,
ज्ञान ही में गम्य जाको प्रभुत्व अनंतरूप,
वेदी निजभावना में आनंद लहीजिये॥४॥

**भावार्थ**—परम पदार्थ को देखने से परमार्थ सधता है, इसलिये उसे देखकर निज-प्रयोजनरूप अनुभव स्वरूप को साध लो; अविनाशी एकरूप सुखराशि अंतर में ही शोभायमान है, उसका अनुभव करके स्वभाव-सुधारस का पान करो। ज्ञानकला का निधान ऐसा भगवान चैतन्यदेव, उसे अंतर में लाकर सदाकाल स्थिर करो। जिसका अनंत प्रभुत्व ज्ञान में ही गम्य है—ऐसे उस परम पदार्थ का वेदन करके निजभावना में आनन्द लो!

## जाको वंदना हमारी है

(कवित्त)

दशा है हमारी एक चेतना विराजमान,
आन परभावनसों तिहुँकाल न्यारी है,
अपनो स्वरूप शुद्ध अनुभवे आठों जाम,
आनंद को धाम गुणग्राम विसतारी है;
परम प्रभाव परिपूरन अखंडज्ञान,
सुख को निधान लखि आन रीति डारी है,
ऐसी अवगाढ़ गाड आई परतीति जाके,
कहे दीपचन्द ताको वंदना हमारी है॥५॥

**भावार्थ**—'हमारी दशा एक चेतनारूप से विराजमान है और अन्य परभावों से त्रिकाल भिन्न है'—इसप्रकार जो अपने स्वरूप को आठों पहर (दिन-रात) शुभ अनुभव में लेता है, आनन्द के धाम गुणसमूह का जिसने विस्तार किया है, परम प्रभावरूप परिपूर्ण अखण्ड ज्ञान एवं सुख के निधान को देखकर जिसने अन्य रीति छोड़ दी है—ऐसी अवगाढ़ दृढ़ प्रतीति हुई है—उसे हम वंदन करते हैं।

———

## आत्मिक रुचि है अनंत सुखसाधिनी

परम अखंड ब्रहमंड विधि लखे न्यारी,
करम विहंड करे महा भवबाधिनी,
अमल अरूपी अज चेतन चमतकार,
समैसार साधे अति अलख अराधिनी;
गुण को निधान अमलान भगवान जाको,
प्रत्यक्ष दिखावे जाकी महिमा अबाधिनी,
एक चिदरूप को अरूप अनुसरे ऐसी,
आतमिक रुचि है अनंत सुखसाधिनी॥६॥

**भावार्थ**—आत्मिक रुचि अनंत सुख को साधनेवाली है। कैसी है वह रुचि? परम अखण्ड चैतन्य ब्रह्म को वह कर्म से भिन्न देखती है, कर्म को खण्ड-खण्ड कर देती है; भवभ्रमण में अत्यंत बाधक है अर्थात् भव-भ्रमण को रोकनेवाली है। निर्मल अरूपी चैतन्य चमत्कार को देखनेवाली है; शुद्ध आत्मरूप समयसार को अत्यन्तरूप से साधनेवाली है और अलख-अतीन्द्रिय चैतन्य का आराधन करनेवाली है; गुण का निधान एवं मलरहित ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे प्रत्यक्ष दिखलानेवाली है; उस आत्मरुचि की महिमा अबाध है;—किसी से वह बाधित नहीं होता। तथा वह रुचि एक चैतन्यस्वरूप का ही अनुसरण करनेवाली है।—ऐसी आत्मरुचि अनंत सुख को साधनेवाली है।

———

## संतन की मति महा मोक्ष अनुसारिणी

अचल अखंड पद रुचि की धरैया,
भ्रम-भाव की हरैया एक ज्ञानगुनधारिनी,
सकति अनंत को विचार करे बारबार,
परम अनूप निजरूप को उधारिनी;
सुख को समुद्र चिदानंद देखे घटमांहि,
मिटै भवबाधा मोक्षपंथ की विहारिनी,
'दीप' जिनराज सो सरूप अवलोके ऐसी,
संतन की मति महामोक्ष अनुसारिनी॥७॥

**भावार्थ**—संतों की मति महामोक्ष का अनुसरण करनेवाली है। कैसी है संतों की मति? अपने अचल अखंड पद की रुचि को धारण करनेवाली है; भ्रमभाव को हरनेवाली है; एक ज्ञानगुण को धारण करनेवाली है; अपनी अनंत शक्ति का बारम्बार चिंतन करनेवाली है। परम अनूप ऐसे निजरूप को प्रगट करनेवाली है, सुख के समुद्र ऐसे चिदानन्दस्वरूप को अपने अंतर में ही देखनेवाली है; भवबाधा मिटानेवाली है और मोक्षपंथ में विहार करनेवाली है तथा जिनराज समान अपने निजस्वरूप का अवलोकन करनेवाली है।—ऐसी संतों की मति महामोक्ष का अनुसरण करनेवाली है। ('ज्ञान-दर्पण' से)

# एक उपयोगी पत्र

अहमदाबाद के श्रीमंत सेठ श्री मणिलाल जेसंगभाई को पूज्य गुरुदेव के प्रति भक्तिभाव है। गत वर्ष उनके एक अठारह वर्षीय पौत्र की अमेरिका में मोटर-दुर्घटना में मृत्यु हो गई और वे अत्यन्त उद्विग्न तथा उदास रहने लगे। उन्होंने पूज्य गुरुदेव के समक्ष कुछ आश्वासनपूर्ण वचन लिख भेजने की इच्छा प्रदर्शित की, और गुरुदेव ने अपने ही हस्ताक्षरों से एक पत्र लिख दिया था। यह वैराग्यपूर्ण आश्वासन-पत्र सर्व जिज्ञासुओं के लिये उपयोगी होने से उसे यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं:—

—सहजानन्द आत्मा का स्मरण करना।

कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थ का कर्ता-भोक्ता नहीं हो सकता।

संयोग की गोद में वियोग पड़ा है। माता की गोद में आनै से पूर्व ही बालक अनित्यता की गोद में पहुँच जाता है। इसलिये:—

'सर्वज्ञनो धर्म सुशर्ण जाणी,
आराध्य आराध्य! प्रभाव आणी।
अनाथ एकान्त सनाथ थाशै;
अेना विना कोई न बांह्य स्हाशे।'

उपरोक्त पत्र लिख देने के कुछ समय पश्चात् पुनः श्री मणिलाल भाई की ओर से आश्वासन के दो शब्दों की माँग आने पर गुरुदेव ने लिखा था:—

'सहज आत्माश्रय वह सुखरूप है; उसकी आराधना करना चाहिये।'

अहा, दुःखमय संसार के शोकसागर में डूबे हुए जीवों को उद्वेग से छुड़ाकर धर्मात्मा के वचन शांतवैराग्य रस का कैसा मधुर सिंचन करते हैं और आराधना का कैसा उत्साह जागृत करते हैं। वह इस वचनामृत का मनन करने से ज्ञात हो जाता है। सत्य ही है कि:—

'वचनामृत वीतराग के..... परम शांत रसमूल।'
औषध जो भव रोग के, कायर को प्रतिकूल।

❀ ❀ ❀

यथार्थ वस्तुस्थिति का अवलम्बन ही सच्चे आश्वासन का एवं शांति का उपाय है। संसार

के किसी भी प्रसंग पर जिज्ञासु-आत्मार्थी जीव को वस्तुस्थिति का स्वरूप विचारकर अपना शाश्वत ज्ञानानंदमयस्वरूप का अवलंबन लेना कर्तव्य है। यही बात गुरुदेव ने उपरोक्त पत्र में बतलाई है।

# कौन कर्ता और क्या उसका कार्य ?

(१) धर्मी जीव कर्ता और निर्मल अवस्था उसका कार्य।

(२) अधर्मी जीव कर्ता और विकारी अवस्था उसका कार्य।

(३) जड़-पुद्गल कर्ता और जड़ की अवस्था उसका कार्य।

[१] धर्मी जीव विकारी भावों का या शरीरादि जड़ की क्रिया का कर्ता नहीं होता।

[२] अधर्मी जीव विकार का कर्ता होता है, और जड़ शरीरादि की क्रिया मैं करता हूँ-ऐसा मानता है, परंतु जड़ के कार्य को वह नहीं कर सकता।

[३] शरीरादि जड़ पदार्थ आत्मा की अवस्था में विकार नहीं कराते और धर्म भी नहीं कराते।

इसप्रकार कर्ता-कर्म का स्वरूप समझकर, शरीरादि जड़ पदार्थों के कार्य का मैं कर्ता हूँ—यह मान्यता छोड़ना चाहिये, और क्षणिक विकार मैं कर्ता तथा वह मेरा कार्य—ऐसी बुद्धि भी छोड़कर त्रिकाली निर्विकार चैतन्यस्वभाव की दृष्टि से निर्मल अवस्थारूपी कार्य प्रगट करना-उसका नाम धर्म है, धर्मी जीव उसका कर्ता है।

# नहीं झुकेगी.... नहीं झुकेगी....

नियमसार का मंगलाचरण करते हुए टीकाकार मुनिराज अपने हृदय में जिनेन्द्र भगवान को स्थापित करके पहले ही श्लोक में कहते हैं कि—हे जिननाथ! आपके होते हुए मैं किसी दूसरे को क्यों नमन करूँ? आप जैसे पूर्ण वीतरागी सर्वज्ञदेव जब मेरे हृदय में विराजमान हैं, तब अन्य रागी-अज्ञानी प्राणियों को मैं क्यों नमस्कार करूँ? हे नाथ! मैंने तो अपने हृदय में आपको ही स्थापित किया है; आपके होते हुए मैं दूसरे को क्यों नमन करूँ?—नहीं करूँगा।

देखो, यह अपूर्व मंगलाचरण! अपने हृदय में जिसने वीतरागी जिनेन्द्र भगवान को स्थापित किया, उसकी परिणति राग से विमुख होकर स्वभावोन्मुख हो गई... वह परिणति अब राग की ओर नहीं झुकेगी। चैतन्यस्वभाव के भार से झुकी हुई अंतर्मुख परिणति राग की ओर क्यों झुकेगी? और वह राग से लाभ मनानेवालों का आदर क्यों करेगी?—नहीं करेगी। इसलिये यहाँ साधक धर्मात्मा नि:शंकतापूर्वक कहता है कि—हे जिननाथ! आपके मार्ग को पाकर हमारी स्वभावोन्मुख परिणति अब विभावों की ओर नहीं झुकेगी.... नहीं झुकेगी! जिनमार्ग के अतिरिक्त हमारी परिणति अब अन्य किसी मार्ग पर नहीं जायेगी। साक्षात् अमृत को प्राप्त करके विष का सेवन कौन करेगा? उसीप्रकार जिनेन्द्रदेव को पाकर कौन मुमुक्षु कुदेवों को नमस्कार करेगा? साक्षात् वीतरागीमार्गरूपी अमृत प्राप्त हो जाने पर रागरूपी विष का आदर कौन करेगा? हे जिननाथ! अत्यन्त भक्ति एवं आह्लादपूर्वक हमारा हृदय आपके चरणों में झुक गया है... आपके पंथ पर मुड़ गया है। अब किसी अन्य को वह नहीं नमेगा... नहीं नमेगा।

जिनमार्ग को पाकर परिणति अप्रतिहतरूप से चिदानन्दस्वभाव की ओर झुकी सो झुकी.... अब बाहर आकर अन्य किसी की ओर नहीं झुकेगी।

# ज्ञान निज महिमा को प्रकाशित करता है

आत्मा की अनंत गुण-महिमा को ज्ञान प्रकाशित करता है। जिसप्रकार—एक लकड़हारा लकड़ी के भारे बेचकर अपना जीवन-निर्वाह करता था; एकबार उसे चिन्तामणि रत्न मिल गया। वह रत्न को अपने घर लाया और रत्न के प्रकाश से उसका घर जगमगा उठा। चिंतामणि रत्न की महिमा को न जाननेवाले लकड़हारे ने अपनी स्त्री से कहा कि इसके प्रकाश में तू रसोई आदि कार्य करना; अब तेल के दीये की आवश्यकता नहीं रही।—ऐसा कहकर वह जंगल में लकड़ी काटने चला गया। इसप्रकार चिन्तामणि रत्न के गुण न जाननेवाला वह लकड़हारों वर्षों तक लकड़ियों के भारे उठाता रहा। एकबार रत्न का पारखी कोई व्यक्ति आया और उसने दया करके लकड़हारे को चिन्तामणि रत्न की महिमा समझाई... तब उसकी महिमा जानते ही उस की दरिद्रता दूर हो गई। यदि वह ज्ञानी पुरुष उसे चिन्तामणि की महिमा न समझाता तो अज्ञान के कारण वह लकड़हारा उसकी महिमा से अनजान ही रहता—उसकी प्रगट महिमा को अप्रगट ही रखता। उसीप्रकार प्रत्येक जीव के पास चैतन्य चिन्तामणि है, उसकी अनंत महिमा है; परंतु संसार के अनंत जीव अनंत गुणों की निजमहिमा को नहीं जानते, इसलिये दु:खी होकर संसार में परिभ्रमण कर रहे हैं। जब चैतन्य-रत्न के पारखी श्रीगुरु मिले और उनहोंने अनंत गुणों की महिमा प्रगट करके बतलाई, तब जिसने वह महिमा जान ली, वह जीव सांसारिक दरिद्रता मिटाकर सुखी हो गया.... उसने निजनिधि को प्राप्त कर लिया। इसप्रकार अपनी अनंत महिमा ज्ञान द्वारा ही ज्ञात हुई। श्रीगुरु ने ज्ञान द्वारा निज महिमा बतलाई और संसारी जीवों को उसकी प्रतीति हुई.... स्पष्ट आभास हुआ। इसलिये ज्ञान ही अनंत गुणों की निजमहिमा को प्रकाशित करता है।

(स्व० पं० दीपचंदजी साधर्मी कृत 'परमात्म पुराण' से)

# आत्मरक्षक बन्धु

नियमसार गाथा ७७ से ८१—इन पाँच रत्नों द्वारा आचार्यदेव ने समस्त विभाव पर्यायों का त्याग कराके शुद्ध चिदानन्दस्वरूप का ग्रहण कराया है। इन पाँच रत्नों का तात्पर्य समझकर जो जीव अंतर्मुख होकर स्वतत्त्व में चित्त को एकाग्र करता है और उसके अतिरिक्त समस्त बाह्य विषयों के ग्रहण की चिन्ता छोड़ता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है।

—इसप्रकार स्वभाव और विभाव के भेद का अभ्यास, वह मुक्ति का कारण है। ऐसे स्वतत्त्व का आश्रय करना ही आत्मा की रक्षा करनेवाला बन्धु है। चैतन्यस्वभाव का आश्रय करके विभावों के उपद्रव से आत्मा की रक्षा करना ही सच्चा रक्षापर्व है। विष्णुकुमार मुनि को अकम्पनाचार्य आदि ७०० मुनिवरों की रक्षा का भाव आया, वह धर्म वात्सल्य का शुभभाव था; उस शुभभाव से पार ऐसे चिदानन्दस्वभाव का वात्सल्य भी उस समय साथ वर्तता था। राग से भी आत्मा की रक्षा करना (-भेदज्ञान करना), सो 'आत्मरक्षा' है। आत्मा को सम्यग्दर्शनरूपी धागा बाँधने पर समस्त परभावों से वह आत्मा की रक्षा करता है, इसलिये वही सच्चा 'रक्षाबंधन' है। सम्यग्दर्शनपरिणतिरूपी बहिन अपने अनादि चैतन्यबंधु को को ऐसा रक्षाबंधन करके कहती है कि—हे चैतन्यबंधु! तू समस्त परभावों से मेरी रक्षा करना। जितने अंश में रागादि हैं, उतने अंश में आत्मा के गुणों का घात होता है और वे रागादि भाव, आत्मा की शांति में उपद्रव करनेवाले हैं; उन उपद्रवकारी भावों से आत्मा को बचाना चाहिये।—किसप्रकार बचाना चाहिये?—तो कहते हैं कि समस्त विभावों से भिन्न अपने शुद्ध स्वतत्त्व में प्रवेश करके उपद्रवी भावों से आत्मा को बचाना, सो आत्मरक्षा है।

*( श्रावण शुक्ला पूर्णिमा—रक्षाबंधन—पर, पूज्य गुरुदेव के प्रवचन से )*

## सम्यग्दृष्टि को अपना चैतन्यस्वभाव ही प्रिय है

# हे जीव! तू चैतन्य की प्रीति कर

[कोल्हापुर में पूज्य गुरुदेव के प्रवचन से; ता० २१-२-५९]

प्रत्येक आत्मा में सर्वज्ञशक्ति है; उसका विश्वास करके अंतर्मुख होने से आनन्द का अनुभव होता है; किंतु जीव ने आत्मा के अनुभव की बात कभी यथार्थरूप से नहीं सुनी.... जब सुनने को मिली, तब उसकी दरकार नहीं की; इसलिये उसने सच्चा श्रवण किया ही नहीं है। समयसार की चौथी गाथा में आचार्यदेव कहते हैं कि—

श्रुतपरिचितानुभूता सर्वस्यापि कामभोगबंधकथा।
एकत्वस्योपलंभः केवलं न सुलभो विभक्तस्य॥४॥

अरे जीव! तूने चैतन्य को चूककर राग और राग के फल की रुचि से उसकी बात सुनी, उसी का बारंबार परिचय किया तथा उसी का अनुभव किया; किंतु राग से पार चिदानन्दस्वरूप आत्मा है, उसकी प्रीति करके कभी उसका श्रवण नहीं किया; परिचय और अनुभव भी नहीं किया। चैतन्य की प्रीति और परिचय के सिवा दूसरा सब कुछ अनंतबार किया, किंतु उससे किंचित् हित नहीं हुआ।

मुनिव्रतधार अनंतबार ग्रीवक उपजायो,
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

मैं और सबको जानता हूँ; किंतु यह नहीं जानता कि मैं कौन हूँ—यह कितने आश्चर्य की बात है ? अरे जीव! शुद्ध चैतन्यतत्त्व को जाने बिना कभी धर्म / सुख नहीं होता। जिसप्रकार मिट्टी के बिना घड़ा नहीं होता, उसीप्रकार शुद्धचैतन्य की श्रद्धा-ज्ञान के बिना कभी धर्म नहीं होता। और जिसप्रकार बीज में से वृक्ष होता है; उसीप्रकार धर्मरूपी वृक्ष का बीज सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन कैसे होता है ?—तो कहते हैं कि सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों का अपूर्व जिज्ञासा द्वारा अभ्यास करना और चैतन्यस्वभाव की प्रीतिपूर्वक बारंबार उसका स्मरण-मंथन करना, सो सम्यग्दर्शन प्रकट करने की रीति है। जिसे जिसकी प्रीति हो, वह बारंबार उसका मंथन करता है। जिसे चैतन्य की प्रीति है, वह अपने श्रद्धा-ज्ञान को अंतरोन्मुख करके बारबार उसका मनन करता है।

सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा कहते हैं कि इस जगत में हमें कोई वस्तु सर्वाधिक प्रिय हो तो वह हमारा चैतन्यस्वभाव ही है; उसके सिवा जगत में अन्य कुछ हमें प्रिय नहीं है। जिसका चिंतन करते ही अपूर्व शांति का वेदन हो—अंतर में शांतरस की लहरें उठें।—ऐसा हमारा चैतन्यस्वभाव ही हमें प्रिय है। राग करते-करते लाभ होगा, ऐसा अज्ञानी जीव मानता है; इसलिये उस अज्ञानी को राग प्रिय है; किंतु राग रहित चैतन्यस्वभाव उसे प्रिय नहीं है। जो जिससे लाभ माने, वह उसका प्रेम क्यों छोड़ेगा? और जो राग का प्रेम नहीं छोड़ेगा, वह संसार से कैसे छूटेगा? इसलिये हे जीवों! यदि तुम्हें संसार से छूटना हो तो संसार का नाश करनेवाले ऐसे चैतन्यतत्त्व का प्रेम करके उसका स्मरण करों—चिंतन करो—अनुभव करो! ऐसा चैतन्य का चिंतन ही संसार समुद्र से पार करनेवाली नौका है, तथा वही भवताप से संतप्त जीवों को शांति देनेवाला है; इसलिये वही कर्तव्य है।

## श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

### द्वारा प्रकाशित

## ग्रंथों की सूची

**समयसार** श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित

पृष्ठ ६३४ छप रहा है

यह महान आध्यात्मिक ग्रंथाधिराज है, जिसमें ज्ञानी-अज्ञानी जीवों का स्वरूप, भेदविज्ञान, नव तत्त्व, कर्ताकर्म, सर्व विशुद्धज्ञान, अनेकांत, ४७ शक्ति, मोक्षमार्ग का स्वरूप, साध्य साधक आदि का सुस्पष्ट वर्णन है। उस पर श्री अमृतचंद्राचार्य कृत सर्वोत्तम टीका है। अत्यंत अप्रतिबुद्ध जीवों को भी जिसमें समझाया गया है। हिन्दी अनुवाद दूसरी आवृत्ति, प्रेस में छप रहा है।

## प्रवचनसार

श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित

पृष्ठ ३७७ छप रहा है

यह शास्त्र भी महान ज्ञान निधि है, जिसमें सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र अधिकार द्वारा वस्तु तत्त्व का विज्ञान विस्तारसहित बतलाया है, यह भी जिनागम में सुप्रसिद्ध शास्त्र है। हिन्दी अनुवाद दूसरी आवृत्ति, प्रेस में छप रहा है।

## नियमसार

श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित

**बड़े साइज में** **कपड़े की जिल्द**

पृष्ठ ४१५ मूल्य ५.०० सेठी ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित

यह महान आध्यात्मिक शास्त्र है। परमानंद के निधानमय आत्मिक सुख का असाधारण और मनोहर वर्णन द्वारा ब्रह्मोपदेश देनेवाला भागवत् शास्त्र है। उस पर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव कृत टीका है, इसमें मोक्षमार्ग की सर्व सत् क्रियाओं का सुंदर वर्णन है। यह शास्त्र भी पूर्ण रूप से संशोधित है। जैनतत्त्व ज्ञान की महानता व सुमधुर शांत रसमय अपूर्व सुखशांति का दर्शक है, और अनुपम कलश काव्य की मनोज्ञ रचना से अध्यात्म रस में खास रोचकता प्रगट करनेवाला है। तत्त्वज्ञान में साररूप अपूर्व निधि है। हिन्दी अनुवाद, बड़े साइज में, कपड़े की सुन्दर मजबूत जिल्द। थोक लेने पर २५ प्रतिशत कमीशन।

## पंचास्तिकाय संग्रह

श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव कृत

पृष्ठ ३१५ मूल्य ४.५०

श्री सेठी दि० जैन ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित यह शास्त्र संस्कृत टीका तथा हिन्दी अनुवाद सहित है। सर्वज्ञ वीतराग कथित छह द्रव्य, नव पदार्थ, सात तत्त्व, मोक्षमार्ग तथा निश्चय-व्यवहार का स्वरूप दर्शानेवाला सुगम और उत्तम शैली का शास्त्र है। प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों को एकत्र करके पाँच साल तक अति परिश्रम द्वारा सं० टीका का अक्षरशः अनुवाद प्रथम बार ही तैयार हुआ है। टीका के नीचे कठिन विषयों पर अच्छा प्रकाश डालनेवाली विस्तृत फुटनोट भी दी गई है। सर्वप्रकार से मनोज्ञ महान ग्रंथ होने पर भी मूल्य ४.५० व थोक लेने पर कमीशन २५ प्रतिशत दिया जावेगा।

## दश लक्षण धर्म ( प्रवचन )

पृष्ठ ९५, १ हफ्ते में तैयार मिलेगा।

जिसमें उत्तम क्षमादि धर्मों के ऊपर विवेचन है। निश्चय-व्यवहार धर्म कब और कैसे होता है ? यथार्थ भावभासनपूर्वक आत्मिक शांति-स्वतंत्रता का स्वाद लेने के लिये इसे अवश्य पढ़िये।

## छहढाला

पृष्ठ १६१ मूल्य ०.८१ (स्व० दौलतरामजी कृत)

जिसमें रोचक ढंग से आत्महित का स्वरूप बतलाया है और गागर में सागर समान जैन तत्त्वज्ञान भरा है। बालक को भी समझने में सुगम हो, ऐसी शैली है। खास मनन करने योग्य है और जिज्ञासुओं में बाँटने योग्य है। थोक लेने पर कमीशन २५ प्रतिशत। (सेठी ग्रंथमाला से प्रकाशित)

## समयसार प्रवचन भाग-१

[पृष्ठ ४८८, मूल्य ४.७५]

समयसारजी शास्त्र की गाथा १ से १२ ऊपर सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी का अपूर्व प्रवचन है। निश्चय-व्यवहार की संधिपूर्वक यथार्थ मोक्षमार्ग की प्ररूपणा उत्तम ढंग से की गई है। यह अच्छी तरह संशोधित दूसरी आवृत्ति है। थोक लेने पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जावेगा।

## समयसार प्रवचन भाग २

पृष्ठ ५२०, मूल्य ५.२५

समयसारजी शास्त्र की गाथा १३ से ३३ तक के प्रवचन इसमें दिये गये हैं।

## समयसार प्रवचन भाग ३

पृष्ठ ५००, मूल्य ४.५०

समयसारजी शास्त्र की गाथा ३४ से ६८ तक के प्रवचन इसमें दिये गये हैं। समयसारजी मूल ग्रंथ तथा सं० टीका का अर्थ समझने के लिये ये तीनों भाग अवश्य पढ़ना चाहिये।

## मोक्षमार्गप्रकाशक की किरणें, भाग १

पृष्ठ २२० मूल्य १.००

जिसमें अध्याय एक से पाँच तक के ऊपर पू० कानजी स्वामी के प्रवचनों का संग्रह है। प्रथम धर्म की शुरुआत कैसे करें, यह समझने के लिये अत्यंत सुगम पढ़ने योग्य है।

## मोक्षमार्गप्रकाशक की किरणें, भाग २

पृष्ठ ४७० मूल्य २.००

जिसमें अध्याय सात के ऊपर पू० कानजी स्वामी के प्रवचनों का संग्रह है; निश्चयाभासी, व्यवहाराभासी का क्या स्वरूप है, तथा उसकी प्रवृत्ति किसप्रकार की है। नव तत्त्व के सम्बन्ध में किसप्रकार की भूल अज्ञानी करते हैं तथा उसे सम्यग्ज्ञानादि की प्रवृत्ति में किसप्रकार की अयथार्थता रह जाती है, उसका विशद विवेचन है। सूक्ष्म और स्थूल गलत मान्यतायें आत्महित में बड़ी बाधक हैं। इसलिये उसे जानकर आत्महितरूप सच्चे प्रयोजन के लिये यह ग्रंथ एकाग्रचित्त से पढ़नेयोग्य है।

## मोक्षशास्त्र दूसरी आवृत्ति

पृष्ठ ९०० मूल्य ५.००

इसमें सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों का और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि का विस्तृत निरूपण सुगम और स्पष्ट शैली से किया गया है, सम्यक् अनेकांतपूर्वक नयार्थ भी दिये गये हैं, जिज्ञासुओं के समझने के लिये विस्तृत प्रश्नोत्तर भी नय-प्रमाण द्वारा सुसंगत शास्त्राधार सहित दिये गये हैं। अच्छी तरह संशोधित और कुछ प्रकरण में खास प्रयोजनभूत विवेचन भी है। यह शास्त्र महत्त्वपूर्ण होने से तत्त्वज्ञान के प्रेमियों को बार-बार अवश्य पढ़ने योग्य हैं।

## सम्यग्दर्शन तीसरी आवृत्ति

पृष्ठ २७२ मूल्य १.६२

जिसमें अति सुंदर वैज्ञानिक ढंग से तत्त्वज्ञान भरा है। सुखशांति का राह (उपाय) सम्यग्दर्शन से शुरु होता है। सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझे बिना संसार का परिभ्रमण कभी नहीं मिटता। अपूर्व दुर्लभ वस्तु आत्म साक्षात्कार निर्विकल्प अनुभव कैसे हो, उसका बहुत सुन्दर ढंग

से वर्णन है। सर्वज्ञ वीतराग कथित छहों द्रव्य को युक्ति दृष्टांत द्वारा सिद्ध करके स्पष्टता से बुद्धिगम्य बनाया है। सुशिक्षित जिज्ञासुओं में भी खास पढ़ने के लिये बाँटने योग्य है। (सम्यग्दर्शन भाग २ गुजराती भाषा में है)।

## ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव

पृष्ठ ३९० मूल्य २.५०] [सिर्फ १५ पुस्तक शेष हैं।

इसमें क्रमबद्धपर्याय तथा पुरुषार्थ के स्वरूप का विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण है। सम्यक् अनेकांतसहित सम्यक् नियतवाद, जिसमें पुरुषार्थ, स्वभाव, काल, नियति और कर्म, ये पंच समवाय आदि आ जाते हैं, उसका विवेचन है। प्रवचनसार गाथा ९९ ऊपर के प्रवचनों का सार और ४७ नयों में से नियत, अनियत, काल, अकाल नय का वर्णन भी है।

## मुक्ति का मार्ग

पृष्ठ १०३, मूल्य ०.५०] [चौथी आवृत्ति

सच्चे सुखरूप मोक्षमार्ग में प्रवेश करने के लिये प्रथम किस-किस बात का ज्ञान जरूरी है, उसका मुख्य रूप से वर्णन है। थोक खरीदकर प्रचार कीजिये।

## भेदविज्ञानसार ( प्रवचन )

पृष्ठ २७२, मूल्य-२

इसमें समयसारजी सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में से गाथा ३९० से ४०४ तक के ऊपर खास सुगम व सुंदर प्रवचनों का संग्रह है।

## मूल में भूल

(पृष्ठ १४०, मूल्य ०.७५) [दूसरी आवृत्ति]

भैया भगवतीदासजी और कविवर बनारसीदासजी कृत निमित्त-उपादान के दोहों पर सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रवचन। जिसमें उपादानरूप निज शक्ति के अनुसार शुद्धरूप या अशुद्धरूप सभी परिणमन अपनी-अपनी स्वतंत्रता से होते हैं, अन्य तो निमित्तमात्र-व्यवहारमात्र कारण हैं, ऐसा न मानकर, निमित्त के अनुसार कार्य मानना—**मूल में भूल है**—यह स्पष्ट किया है।

## निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध क्या है ?

पृष्ठ १८, मूल्य ०.१५

इस पुस्तिका में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का वर्णन है।

## जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला

भाग १-२-३, प्रत्येक का मूल्य ०.६५ [सेठी ग्रंथमाला से प्रकाशित]

(पृष्ठ सं० भाग १-१२९, भाग २-१३७, भाग ३-१३८)

जिसमें शास्त्राधारपूर्वक उत्तम प्रकार से जैन सिद्धान्त का सत्यस्वरूप समझने के लिये प्रश्नोत्तर दिये गये हैं। द्रव्य, गुण, पर्याय, अभाव, कर्ता-कर्मादि छह कारक, उपादान निमित्त तथा निमित्त नैमित्तिक, सात तत्त्व, प्रमाण-नय-निक्षेप, अनेकान्त और स्याद्वाद, मोक्षमार्ग, जीव के असाधारणभाव, गुणस्थानक्रम इत्यादि खास प्रयोजनभूत बातों का वर्णन स्पष्टता से किया है। काफी प्रचार हो रहा है, प्रथम भाग तीसरी बार छपा है।

## जैन तीर्थ क्षेत्र पूजा पाठ संग्रह

पृष्ठ २९०, मूल्य १.५०

जिसमें सभी सिद्धक्षेत्रों की प्राचीन बड़ी-बड़ी पूजा तथा सिद्धक्षेत्र का परिचय दिया गया है। कहाँ से कहाँ जाना इसका वर्णन भी इसमें है।

## स्तोत्रत्रयी ( सटीक )

पृष्ठ-७८ मूल्य ०.५०

जिसमें कल्याणमंदिर स्तोत्र, भक्तामर और चतुर्विंशति स्तोत्र तथा उनके अर्थ हैं। साथ ही आध्यात्मिक तत्त्वमय भावार्थ है। [पाटनी ग्रंथमाला से]

## आध्यात्मिक पाठसंग्रह

पृष्ठ सं० ७९३ मूल्य ३.००

पाटनी ग्रंथमाला से प्रकाशित यह एक उत्तम ग्रंथ है, जिसमें समयसार नाटक, परमार्थवचनिका, स्वरूपसंबोधन, इष्टोपदेश, परमानन्द स्तोत्र, रहस्यपूर्ण चिट्ठी, समयसार कलश, प्रवचनसार मूल गाथा के पद्यानुवाद तथा श्री दौलतरामजी, द्यानतरायजी आदि कवियों की सुंदर

रचनाऐं हैं; वैराग्य और भक्ति का प्रकरण भी है।

## शासन प्रभाव

पृष्ठ सं० २४ मूल्य ०.१२

जिसमें सुंदर चित्र सहित पूज्य कानजी स्वामी की जीवनी तथा जैनधर्म के सिद्धांतों का और आपके द्वारा पवित्र प्रभावना के कार्यों का संक्षेप में वर्णन है।

## लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका

पृष्ठ १०५, मूल्य ०.१९ तीसरी आवृत्ति

शास्त्राधार सहित और संक्षेप में खास प्रयोजनभूत तत्त्वज्ञान की जानकारी के लिये उत्तम मार्गदर्शक प्रवेशिका है।

## जैन बाल-पोथी [ सचित्र ]

पृष्ठ ३२, मूल्य ०.२५

जिसमें ४८ सुंदर चित्रों के माध्यम से मूल प्रयोजनभूत तत्त्वज्ञान समझाया गया है। इसे बालक बड़े प्रेम से पढ़ते हैं। अनेक भाषाओं में छप चुकी है। कई बार पाँच हजार प्रतियाँ छप चुकी हैं। खास तौर से बालकों के लिये धर्म में रुचि पैदा करने के लिये उपयोगी है। धार्मिक अवसरों पर बाँटना चाहिये।

## वैराग्य पाठ संग्रह

पृष्ठ ३३५, मूल्य १.२५ पाटनी ग्रंथमाला से

इसमें श्री दौलतरामजी आदि के तथा ज्ञानदर्पण, ब्रह्मविलास, बनारसीदास, समयसार नाटक के अच्छे-अच्छे काव्य हैं।

## भक्तिपाठ संग्रह

पृष्ठ १४५, मूल्य १.०० पाटनी ग्रंथमाला से

जिसमें श्री समंतभद्राचार्य से लेकर प्राचीन जैन कवियों की उत्तमोत्तम कृतियों का संग्रह है।

## पंचमेरु और नन्दीश्वर पूजन विधान

पृष्ठ सं० १७१, मूल्य ०.७५

जिसमें निर्वाण कल्याणक तथा रत्नत्रयादि पूजन भी है। पंचमेरु और नन्दीश्वर विधान आदि बड़ी पूजायें हैं।

## समयसार हिन्दी पद्यानुवाद

छप रहा है

## अनुभव प्रकाश

पृष्ठ १२६, मूल्य ०.५० (लेखक-दीपचंदजी साधर्मी)

जिसमें आत्मानुभव को सुगम-रीति से समझाया गया है।

## आत्मधर्म ( मासिक पत्र )

वार्षिक मूल्य ३.००

जैनधर्म वस्तु स्वभाव है, संप्रदाय नहीं है। वस्तुतः विश्व के सभी पदार्थों का वास्तविक स्वरूप जैसा है, वैसा दर्शाकर आत्मकल्याण का सच्चा उपाय बतलानेवाला विश्वदर्शन जैनधर्म है, परम उपकारी पूज्य सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के प्रवचनों का सार इसमें दिया जाता है। उसको यथार्थरूप में समझकर आत्मकल्याण कीजिये। आत्मधर्म पत्र तथा उसकी गत वर्षों की फाइलें पवित्रज्ञान निधि हैं। अवश्य पढ़िये-मनन कीजिये। नमूने के अंक भेंट में मिल सकते हैं।

## आत्मधर्म फाइलें [ सजिल्द ]

वर्ष १, ३, ५, ६, ७, ८, १० प्रत्येक का मूल्य ३.७५।

# ग्रंथ सूची

| | |
|---|---|
| समयसार | छप रहा है |
| प्रवचनसार | छप रहा है |
| नियमसार | ५.५० |
| पंचास्तिकाय संग्रह | ४.५० |
| दशलक्षण धर्म (प्रवचन) | ०.५० |
| छहढाला | ०.८१ |
| समयसार प्रवचन भाग १ | ४.७५ |
| समयसार प्रवचन भाग २ | ५.२५ |
| समयसार प्रवचन भाग ३ | ४.५० |
| मोक्षमार्ग प्रकाशक की किरणें भाग १ | १.०० |
| मोक्षमार्ग प्रकाशक की किरणें भाग २ | २.०० |
| मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्रजी) | ५.०० |
| सम्यग्दर्शन | १.६२ |
| ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव | २.५० |
| मुक्ति का मार्ग | ०.५० |
| भेदविज्ञानसार | २.०० |
| मूल में भूल | ०.७५ |
| निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध क्या है ? | ०.१५ |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग १-२-३ प्रत्येक | ०.६५ |
| जैन तीर्थ क्षेत्र पूजा पाठ संग्रह-तीर्थ परिचय | १.५० |
| स्तोत्रत्रयी | ०.५० |
| आध्यात्मिक पाठ संग्रह | ३.०० |
| शासन प्रभाव | ०.१२ |

| | |
|---|---|
| लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका | ०.१९ |
| जैन बाल पोथी (सचित्र) | ०.२५ |
| वैराग्य पाठ संग्रह | १.२५ |
| भक्ति पाठ संग्रह | १.०० |
| पंचमेरु और नंदीश्वर पूजन विधान | ०.७५ |
| आत्मधर्म (मासिक पत्र) | ३.०० |
| आत्मधर्म (पुरानी फाइलें) वर्ष १,३, ५, ६, ७, ८, १० प्रत्येक का मूल्य | ३.७५ |
| अनुभवप्रकाश | ०.५० |
| समयसार हिन्दी पद्यानुवाद | छप रहा है। |

सभी ग्रंथों पर डाक खर्च अलग लगेगा।

मिलने का पता—

**श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट**

पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

## नया प्रकाशन

# दश लक्षण धर्म ( प्रवचन )

पृष्ठ ९५ १ हफ्ते में तैयार मिलेगा।

जिसमें उत्तम क्षमादि धर्मों के ऊपर विवेचन है। निश्चय-व्यवहार धर्म कब और कैसे होता है ? यथार्थ भाव भासन पूर्वक आत्मिक शांति-स्वतंत्रता का स्वाद लेने के लिये इसे अवश्य पढ़िये।

★

# समयसार प्रवचन भाग १

[ पृष्ठ ४८८, मूल्य ४.७५ ]

समयसारजी शास्त्र की गाथा १ से १२ ऊपर सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी का अपूर्व प्रवचन है। निश्चय-व्यवहार की संधिपूर्वक यथार्थ मोक्षमार्ग की प्ररूपणा उत्तम ढंग से की गई है। यह अच्छी तरह संशोधित दूसरी आवृत्ति है। थोक लेने पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जावेगा।

★

# सोनगढ़ समाचार

परम पूज्य सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी सुखशांति में विराजते हैं, सबेरे प्रवचन में श्री प्रवचनसारजी शास्त्र में से ४७ नयों का अधिकार तथा दोपहर में अष्ट पाहुड़ में से बोधपाहुड़ नामक चौथा अधिकार पढ़ा जाता है।

जेठ सुदी पंचमी को श्रुतपंचमी का उत्सव मनाया गया था, उसमें श्री षट्खंडागम तथा कषायपाहुड़ शास्त्र (धवला टीका-महाबंध और जयधवल टीका) अच्छी तरह सजाकर जिनमंदिर में वेदी के ऊपर विराजमान करके पूजा ठाठ-बाठ से की, उसके बाद स्वाध्याय मंदिर में ज्ञान पूजा और जिनवाणी माता की भक्ति की गई।

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

# अवश्य स्वाध्याय करें

| | | | |
|---|---|---|---|
| पंचास्तिकाय | ४ ॥) | ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव | २ ॥) |
| मूल में भूल | ।।।) | मोक्षशास्त्र बड़ी टीका सजिल्द | ५) |
| श्री मुक्तिमार्ग | ॥=) | सम्यग्दर्शन (दूसरी आवृत्ति) | १ ॥= |
| श्री अनुभवप्रकाश | ॥) | द्वादशानुप्रेक्षा (स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा) | २) |
| श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह | ।।।) | जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह कपड़े की जिल्द | १ ।=) |
| समयसार प्रवचन भाग २ | ५ ।) | | |
| समयसार प्रवचन भाग ३ | ४ ॥) | भेदविज्ञानसार | २) |
| प्रवचनसार | ५) | अध्यात्मपाठसंग्रह | ५) |
| अष्टपाहुड़ | ३) | समाधितन्त्र | २ ।= |
| चिद्विलास | १=) | निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ? | =) |
| मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र० | १ ।=) | स्तोत्रत्रयी | ॥) |
| द्वितीय भाग | २) | लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका | =) |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र० | ॥–) | 'आत्मधर्म मासिक' लवाजम– | ३) |
| द्वितीय भाग | ॥–) | आत्मधर्म फाइलें १–३–५–६–७–८–१०–११–१२–१३ वर्ष | ३ ।।।) |
| तृतीय भाग | ॥–) | | |
| जैन बालपोथी | ।) | शासन प्रभाव | =) |

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
**श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट**
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)


मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।